जनजातीय चेतना, कला, साहित्य, संस्कृति एवं समाचार का राष्ट्रीय मासिक

ककसाड़

वर्ष 11 अंक 114
सितंबर, 2025
मूल्य : 25/- रुपए

ककसाड़
राष्ट्रीय मासिक पत्रिका

ISSN 2456-2211

दिल्ली से प्रकाशित

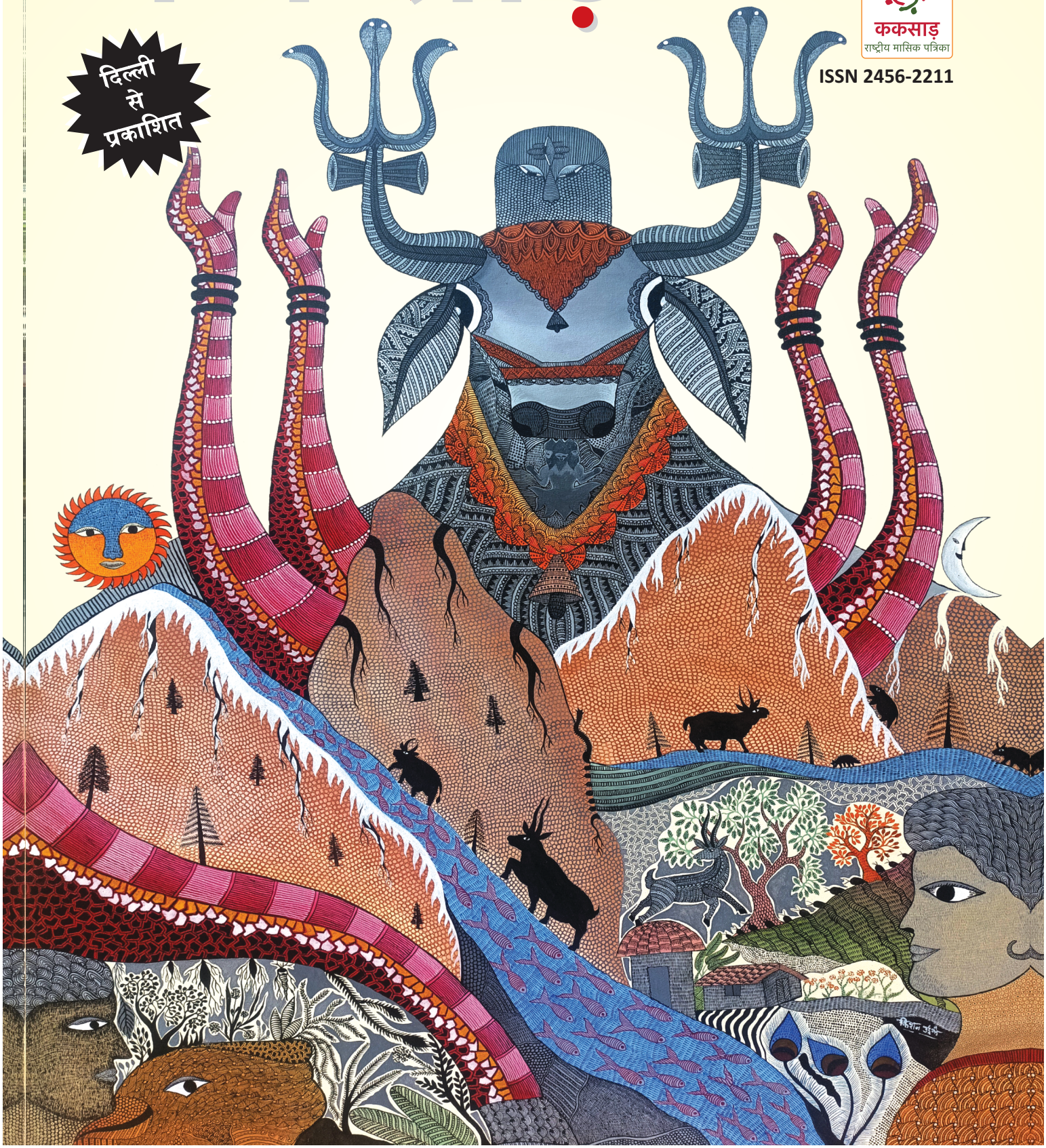

ककसाड़

(जनजातीय चेतना, कला, साहित्य, संस्कृति एवं समाचार का राष्ट्रीय मासिक)

सितंबर 2025 **वर्ष-11 • अंक-114**

संस्थापना वर्ष 2015

प्रबंध एवं परामर्श संपादक
कुसुमलता सिंह

संपादक
डॉ. राजाराम त्रिपाठी

कानूनी सलाहकार
फैसल रिजवी, अपूर्वा त्रिपाठी

•

ग्राफिक डिजाईन
रोहित आनंद

• मुख्य कार्यालय एवं रचनाएँ भेजने का पता •

सी-54 रिट्रीट अपार्टमेंट, 20-आई.पी. एक्सटेंशन, पटपड़गंज, दिल्ली-110092

फोनः 9968288050, 011-22728461

•

• संपादकीय कार्यालय •

151, डी.एन.के. हर्बल इस्टेट, कोण्डागाँव, छ.ग.-494226

फोनः 9425258105, 07786-242506

ई-मेल : kaksaadeditor@gmail.com
kaksaadoffice@gmail.com

वेबसाइट : www.kaksad.com

मूल्य : **रु. 25** (एक प्रति), वार्षिक : **रु. 350/-** संस्था और पुस्तकालयों के लिए वार्षिक : **रु. 500/-** वार्षिक (विदेश) : **$110** यू.एस. आजीवन व्यक्तिगत : **रु. 3000/-** संस्था : **रु. 5000/-**

संपादन-संचालन पूर्णतः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक

दिल्ली से प्रकाशित होने वाली 'ककसाड़' पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार उनके अपने हैं जिनसे संपादकीय सहमति अनिवार्य नहीं।

• ककसाड़ से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे • **कुसुमलता सिंह** स्वामी, मुद्रक एवं प्रकाशक।

अनुक्रम

दिल्ली लाइब्रेरी बोर्ड (संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार) द्वारा पुरस्कृत

4. **संपादकीय**

साक्षात्कार

10. कपड़े की सिलाई से कैनवास पर पेंटिग तक (गोंड कलाकार **किशन उइके** से **कुसुमलता सिंह** की बातचीत)

लेख

8. सपेरों का जातीय वाद्य : बीन : **प्रो. किरण शर्मा**

11. लोक जुबानों की हाँडियों का कवि : कुमार कृष्ण : **डॉ. प्रियंका भारद्वाज**

14. नलिन विलोचन शर्मा- विश्रुत देव तीर्थ महाचेता! : **चारूमित्र**

20. बोलचाल और रोजगार की भाषा के रूप में हिंदी भाषा : **राजेंद्र सिंह गहलोत**

कहानी

26. जोड़-घटाव : मूल ओड़िशा- **डॉ. गौरहरि दास**, अनुवाद- **प्रदीप कुमार राय**

32. मनुहार : **हरि प्रकाश राठी**

लोक-नृत्य

17. जनजातियों में नृत्य प्रथा : **कुसुमलता सिंह**

कविताएँ/चुने हुए शेर

37. **चन्द्र मोहन, चन्द्र** 37. **छाया सिंह 38. योगेंद्र प्रताप मौर्य 39. राजलक्ष्मी 40. शशिकांत**

धरोहर

23. बोगेनविलिया : **रवीन्द्र कालिया**

निबंध

41. पाब्लो नेरूदा : **तेज प्रकाश**

पुस्तक चर्चा

47. संबंधों का धर्मशास्त्र : **सुरेखा शर्मा**

लघुकथा

16. झील के पार : **पवन शर्मा**

32. शादी का श्रेय : **अंकुश्री**

36. **कहावतें**

22. **यादें**

40. **क्या है ककसाड़?**

साहित्यिक एवं सांस्कृतिक समाचार

48. **ऐतिहासिक कदम : ककसाड़ पहुँची रूस**

आवरण गोंड कलाकृति - किशन उइके

(इनकी विशेषता है आकृतियों के भीतर प्रकृति की काल्पनिक रचना करना)

मो. : 93405-21877

संपादकीय

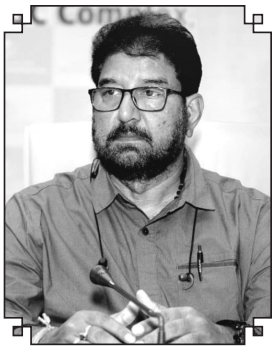

ककसाड़ का सितंबर अंक आपके हाथों में है। इन दिनों में खेतों के बीच से गुजरते हुए दूर-दूर तक लहराती हरियाली के बीच में धान की बालियाँ आहिस्ता आहिस्ता सिर उठाने लगी हैं। हवा के साथ झूमती ये बालियाँ मानो धरती की मुस्कान हों, जो किसान के परिश्रम और प्रकृति की कृपा का अद्‌भुत संगम दिखाती हैं। वर्षा की थमती हुए फुहारों और कहीं-कहीं अब भी बरसती बूँदों के बीच यह दृश्य हमें याद दिलाता है कि समय का पहिया आगे बढ़ चुका है। अंकुर अब बालियों में रूपांतरित हो रहे हैं।

यह सब मिलकर इस मौसम को एक गहरी प्रतीकात्मकता और विश्वासपूर्ण अपनत्व देते हैं। वर्षा के ये दिन केवल कृषि और अन्न की ही नहीं, बल्कि हमारी संस्कृति और लोकजीवन की भी धड़कन हैं। परंतु यही समय हमें यह भी याद दिलाता है कि प्रकृति और मौसम अब उतने भरोसेमंद नहीं रह गए, जितने हमारे पुरखों के दिनों में हुआ करते थे।

इस बार का मौसम कई कठिन सवाल भी साथ लाया है। वर्षा का असमय ठहरना, कभी बाढ़, कभी सूखा और कभी बेमौसम ओले, मानो प्रकृति हमें लगातार यह याद दिला रही हो कि आधुनिक विज्ञान की गणनाएँ और उपग्रहों के आँकड़े भी उस सहज समझ की बराबरी नहीं कर पाते, जो हमारे आदिवासी समुदायों ने प्रकृति से संवाद करके विकसित की थी। आज भी वे पत्तियों की हरियाली, पक्षियों की उड़ान, चींटियों के बिल और पेड़ों के फूलने-फलने से मौसम का अनुमान पहले ही लगा लेते हैं।

इस वर्ष हिमाचल प्रदेश ने एक कड़ा सबक दिया है और मानो पूछ लिया है, कि धरती जिसे तन्हा छोड़ दी जाए, उसकी रक्षा किसकी जिम्मेदारी है? पिछले जून 20 से अगस्त 16 के बीच राज्य में हुई मानसून त्रासदी का आँकड़ा भयावह है। कम से कम 276 लोगों की जानें गईं; इनमें 143 मौतें बारिश-संबंधित कारणों (जैसे बादल फटना, भूस्खलन) से और 133 सड़क दुर्घटनाओं में हुईं। मंडी, कांगड़ा, चंबा, कुल्लू और किन्नौर जैसे जिले सबसे अधिक प्रभावित रहे। 2,21,164.75 लाख का व्यापक इंफ्रास्ट्रक्चर और कृषि-नुकसान दर्ज किय गया। सैकड़ों सड़कें, बिजली-जल योजनाएं और गाँव संपर्क से कट गए।

यह केवल बारिश की आपदा नहीं, बल्कि जलवायु परिवर्तन की भयावह चेतावनी थी , उस सर्वनाशी सभ्यता के लिए जो विकास को केवल क्रंक्रीट की चमक तक सीमित कर बैठी है। यह घटनाएँ नदियों, पहाड़ों और जंगलों की व्यथा को लेकर हमारी सतत उदासीनता के गंभीर परिणामों की बानगी मात्र हैं।

प्राच्य दर्शन कहता है, "पृथ्वी सर्वभूतानां माता" धरती हमारी माँ थी, है और हमेशा रहेगी। जब यह माँ आँसुओं की तरह बह जाए, तो हमें अपने कृत्यों पर शर्मिंदा होना चाहिए, पर हम अक्सर आँख मूँद लेते हैं। आधुनिक पर्यावरण दर्शन के जनक ऑल्डो लियोपोल्ड कहते हैं, "जब तक मनुष्य भूमि, जल और जीवों के साथ नैतिक संबंध स्थापित नहीं करता, वह सभ्य नहीं कहलाएगा।" यह कथन किसी आदिवासी कवि की तरह सरल और मार्मिक है।

विकास की दौड़ और बाजार की होड़ में बोली-भाषाएँ सहमी हुई-सी चुप हो रही हैं। हल्बी, भतरी, दंडामी, गोंडी जैसी बोलियों में तरह-तरह के गीत हुआ करते थे, जिनमें जंगल, नदी, पहाड़ों और खेतों की कहानियाँ होती थीं; मेड़ की स्मृतियाँ, गाँवों की साँसें बसती थीं। उन गीतों में जानवर बातें करते थे, देवी-देवता धरती पर उतरकर पेड़-पौधों, जीव-जंतुओं और मनुष्यों से संवाद करते थे। अब ये बोलियाँ धीरे-धीरे मिट रही हैं, मानो नदी की कलकल ध्वनि धीरे-धीरे थम जाए और केवल भयावह खामोशी शेष रह जाए। बोली-भाषा हमारे अस्तित्व का आधार है, जब वह लुप्त होती है,

तो हमारी सभ्यता की आत्मा भी लुप्त हो जाती है।

हमने अपने पुरखों द्वारा सदियों के अनुभव से अर्जित उस परंपरागत ज्ञान को भुला दिया है, जिसमें धरती और पर्यावरण के साथ संतुलित सहजीवन के सूत्र छिपे थे। यही वह ज्ञान है, जिसे हम आधुनिकता की अंधी दौड़ में उपेक्षित कर बैठे हैं। पश्चिमी विद्वान अरस्तु ने कहा था, "प्रकृति व्यर्थ कुछ नहीं करती।" फिर हम क्यों उसकी अनदेखी करें? हमारे शास्त्रों में भी स्पष्ट निर्देश है, "प्रकृतिः सुखं दातुं, दुःखं च दातुं समर्था।" अर्थात् प्रकृति सुख और दुःख दोनों देने में समर्थ है, यह हम पर निर्भर करता है कि हम उसके साथ कैसा व्यवहार करते हैं।

कृषि, पर्यावरण और आदिवासी जीवन के प्रश्न आज केवल स्थानीय नहीं रह गए हैं, वे वैश्विक बहस के केंद्र में हैं। जब पूरी दुनिया जलवायु परिवर्तन से जूझ रही है, तब बस्तर की पहाड़ियों और वनों से निकलती सरल जीवन-दृष्टि हमें राह दिखा सकती है। आदिवासी जीवन शैली हमें सिखाती है कि 'संपन्नता का अर्थ संग्रह में नहीं, संतुलन में है।' ऋषि कणाद ने कहा था, "सर्वं द्रव्यं गुणपर्यायवान।" अर्थात् प्रत्येक पदार्थ अपने गुण और उपयोगिता के साथ ही अस्तित्ववान है। यही समझ आज की उपभोक्तावादी प्रवृत्ति के लिए दर्पण है।

इन कठिन हालातों में जनजातीय समुदायों की जीवनशैली और उनका अनुशासन ही अब हमें बचा सकता है। आज यदि हमें सही दिशा, सही शिक्षा चाहिए, तो जनजातीय समाज ही वह शिक्षक है, जो वर्षों का अनुभव समेटे हुए है। गोंड किसान खेत में गाते हैं "धरती अनुमति दे।" यह केवल शब्द नहीं, यह जीवन की कविता है। भील समुदाय पेड़ को "पूर्वज" मानकर उसका आशीर्वाद लेते हैं। नागा समुदाय का मोन उत्सव हमें सिखाता है कि शिकार और संतुलन साथ चल सकते हैं, जब तक प्रेम और सम्मान हो। यह ज्ञान किसी पाठ्यपुस्तक में नहीं, बल्कि अनुभव और परंपरा से उपजता है। जनजातीय जीवन इस सीख का जीवंत विद्यालय है, जहाँ नए युग की सोच और पारंपरिक चिंतन एक साथ चल सकते हैं।

विकास के सरपट दौड़ते घोड़े से उतरकर कुछ पल ठहरकर हमें सोचना होगा कि क्या हम आने वाली पीढ़ियों को ऐसा समाज देना चाहते हैं, जहाँ जीवन केवल कंक्रीट और स्क्रीन में कैद हो? या हम उन्हें ऐसी हरित धरती सौंपना चाहते हैं, जहाँ बोलियाँ, गीत, नदियाँ, पहाड़, जंगल, खेत, मेड़, पेड़ और मानवता सब एक साथ साँस ले सकें?

आइए, आज हम प्रण लें कि वृक्ष, भाषा, परंपरा और मानव गरिमा को बचाए रखना ही हमारा पहला धर्म है। जनजातीय ज्ञान को न केवल सहेजना, बल्कि उससे सीखना हमारी सबसे बड़ी जिम्मेदारी होनी चाहिए।

ककसाड़ की टीम ने इस अंक को सार्थक बनाने और आप तक पहुँचाने में बहुत मेहनत की है। हमें पूर्ण विश्वास है कि इस अंक की सामग्री न केवल आपके चिंतन को गहरा करेगी, बल्कि एक नई दृष्टि भी प्रदान करेगी। हम अपने सभी विद्वान लेखकों, प्रिय सहयोगियों और सुधी पाठकों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं, जिन्होंने ककसाड़ को निरंतर सशक्त बनाया है। हम एक बार फिर दोहराते हैं कि आप सबके सुझाव, पत्र, मेल और संदेश हमारी सबसे बड़ी पूँजी हैं। कृपया अपने विचार और सुझाव हमें लिख भेजें, ताकि यह पत्रिका एक साझा मंच की तरह और भी जीवंत बन सके। इसके साथ ही अगले अंक तक के लिए विदा!

आपका

डॉ. राजाराम त्रिपाठी
मो. 94252-58105

कपड़े की सिलाई से कैनवास पर पेंटिग तक

(गोंड कलाकार **किशन उइके** से **कुसुमलता सिंह** की बातचीत)

प्र. सिलाई से गोंड कला की पेंटिग तक के अपने सफर के बारे में बताएँ?

उ. अब तो मैं गोंड कला का कलाकार कहलाता हूँ। पहले बचपन से ही मैं सिलाई का काम करता था। उसमें मेरी रुचि थी। सिलाई-कटाई, कपड़ों को अपनी कल्पना से नया आकार देना मुझे अच्छा लगता था। किसी चीज में रुचि हो तो वैसी ही मदद भी मिल जाती है। हमारी उम्र के ही एक टेलर मास्टर थे उन्होंने मेरी रुचि और हुनर देखा तो अपने साथ मुझे कानपुर ले आए। वहाँ टेलरिंग की दुकान पर मैं मन लगाकर काम करने लगा, दुकान चल निकली लोग मेरी सिलाई की तारीफ करते। कुछ समय बाद हम लोगों ने सोचा कि अब किसी बड़ी जगह पर चलकर किस्मत आजमाई जाए। हम लोग वहाँ से दिल्ली फिर मुंबई आ गए। मेरी उम्र 18-19 साल की थी। जोश भरा था कि खूब पैसा कमाकर माँ-बाप को दें और गाँव में अच्छा घर बनाएँ। कुछ समय ही बीता था कि मेरे साथ के टेलर मास्टर जो मेरे गुरू भी थे उनका एक विजातीय लड़की से प्रेम हो गया और वे उसके साथ भाग गए। मैं फिर अकेला था। जिनकी दुकान थी उन्होंने कहा कि कोई बात नहीं वह भाग गया। तुम यहीं रहो काम करो। पर मेरा मन नहीं लग रहा था। मैं बहाना बनाकार कानपुर लौट आया। वहाँ भी बड़ा उचाट लगने लगा तो मैं गाँव आ गया। 2011 में मेरा विवाह हुआ। तब तक मैं अपने गाँव में भी सिलाई का काम करता था। वहाँ एक दिन जीन्स बनाने वाली कंपनी का आर्डर आया। उन्होंने जीन्स बनाने के लिए जो नाप भेजा उस पर मैंने जीन्स बनाकर भेजी और लंबा आर्डर मिल गया। फिर मैंने 30 जीन्स बनाकर भेजी। यह देख मेरे साले ने कहा कि तुम्हारे हाथ में हुनर है यदि समय मिले तो पेंटिंग भी करो। मेरी पत्नी जनगढ़ सिंह श्याम के सगे भाई मधुलाल श्याम की पोती है। यानि मधुलाल श्याम के बड़े बेटे की बेटी। मेरी सुसराल में सभी गोंड कलाकार हैं और मशहूर हैं। मेरे दादा भी पेंटिंग तो नहीं करते थे पर सुमा डोरा बनाते थे। यह एक प्रकार की खाट होती थी जिस पर सोने से शरीर का दर्द खत्म हो जाता था। बाद में जब वे बूढ़े हो गए तो बनाना बंद कर दिए। अब लोग इसकी माँग भी नहीं करते थे। सब दवाई और ऑपरेशन की ओर जाने लगे।

मेरे परिवार में कला थी और कलाकार भी थे, बस तब तक मेरा ध्यान उस पर नहीं गया था। जब मेरे साले ने मुझसे पेंटिंग बनाने के लिए कहा तो मैं थोड़ा गंभीर हुआ और पेंटिंग बनाने लगा। टेलरिंग छूट गई। बांधवगढ़ पार्क और रजा फाउंडेंशन में मैंने अपनी पेंटिंग प्रदर्शित की सराहना मिली और मेरी पहचान बनने लगी। मैंने 2015 से घर में ही रहकर पत्नी ज्योति उइके के साथ पेंटिंग बनानी शुरू कर दी जो आज तक बिना किसी व्यवधान के चलती जा रही है। अब तो आर्ट गैलरी वाले स्वयं ही सपंर्क करते हैं और पेंटिंग बनवाते हैं। प्रदर्शित करते हैं, बेचते हैं और हमें आर्थिक

किशन उइके

पता– गाँव-पाटन, पोस्ट-पाटन, डिंडौरी पिन-481884 (मध्य प्रदेश)

कुसुमलता सिंह
प्रबंध एवं परामर्श संपादक, ककसाड़
मो. 99682-88050